क्या हमारे विश्वास

अनीता रामपाल

ऊपर दी गई एक पेंटिग में होली का एक दृश्य है। यह चित्र चंबा शैली का है और सन् 1775 में बना था। चित्र में पिचकारियों की धार को ज़रा ध्यान से देखिए। क्या पिचकारी से निकलते पानी की धार वास्तव में ऐसी सीधी लाईनों में जाती है? यदि नहीं तो फिर कैसे गिरती है? अब ज़रा अठाहरवीं शताब्दी के एक और चित्र (चित्र-2) को देखिए, यह यूरोप में बना है। इसमें एक तोप का गोला दर्शाया गया है। ज़रा देखिए कि क्या गोले का पथ चित्र में सही दिखाया गया है? यदि नहीं तो फिर कैसा होना चाहिए?

इस लेख का उद्देश्य पुराने चित्रों पर महज़ नुक्ताचीनी करना नहीं है। आखिर कलाकार की कुछ अपनी कल्पना रही होगी और

न्यूटन को न मानें?

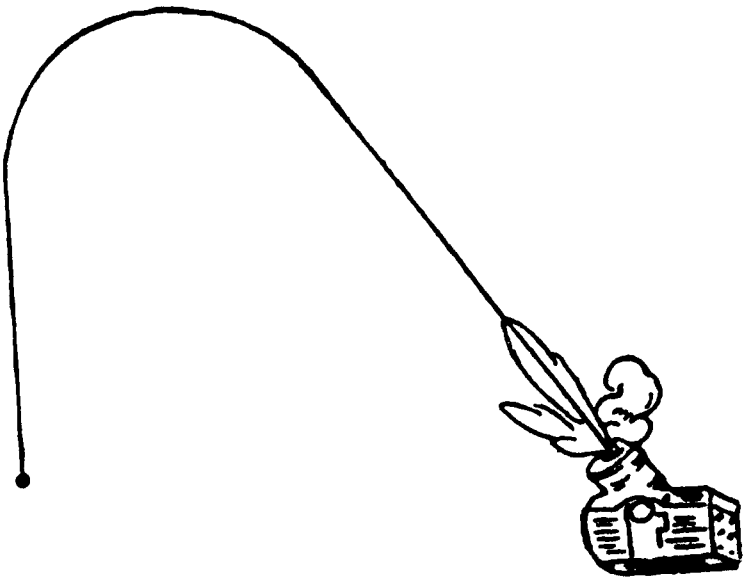

चित्र:2

हमारी क्या मजाल कि उस पर ऐसे-वैसे प्रश्न उठाएं कि – यह लाईन सीधी नहीं, वक्र होनी चाहिए थी। पर हम यह ज़रूर समझना चाहते हैं कि उस कलाकार के मन में क्या धारणा है जिसके कारण वह गिरती हुई वस्तु को यूं सीधी लाईन से दर्शाता है। जबकि वास्तव में वस्तुएं इस तरह गिरती ही नहीं हैं। और हम केवल कलाकार का मन ही नहीं, अन्य लोगों का मन भी समझना चाहते हैं। सभी का – चाहे वो छोटे हों या बड़े, विज्ञान पढ़ते हों, पढ़ाते हों या फिर उससे कोसों दूर रहना चाहते हों।

शुरुआत हमने दिल्ली के चार स्कूलों में, दसवीं कक्षा के छात्रों के साथ की थी। दसवीं इसलिए कि तब तक उन्होंने चलन के सिद्धांतों (Laws of Motion) के बारे में पढ़ लिया होता है। और हम यही अध्ययन करना चाहते थे कि 'बल-विज्ञान' यानी मेकेनिक्स की जो मूल अवधारणाएं हैं, जैसे चलन या बल, उनके बारे में छात्रों के अपने विश्वास क्या हैं? क्या ये विश्वास

उन सिद्धांतों से मेल खाते हैं जो उन्हें भौतिकी में सिखाए जाते हैं? यदि नहीं तो उनके इन विश्वासों का स्रोत क्या है। हमने दो ऐसे स्कूल लिए जिन्हें देश के प्रमुख पब्लिक स्कूल माना जाता है और जिनके छात्र हमेशा बोर्ड की परीक्षाओं में ढेर सारे नंबर बटोर लेते हैं। और दो स्कूल ऐसे लिए जो सामान्य सरकारी स्कूल थे, जिनके छात्रों को न तो कोई खास सम्मान प्राप्त था, न ही सुविधाएं; और न ही उन्हें नंबर लेने में माहिर बनाया गया था।* दोस्ताना बातचीत के दौरान सभी छात्रों को विश्वास दिलाया गया कि हमारे प्रश्न किसी परीक्षा के लिए नहीं थे और न ही उनका निजी रूप से मूल्यांकन होना था। हम तो सिर्फ यह समझना चाह रहे थे कि कितने लोग एक तरह से सोचते थे और क्यों? हमने उन्हें तेरह प्रश्न दिए। इन्हें हल करने के लिए समय का कोई दबाव नहीं था। प्रश्न हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों ही में उपलब्ध थे। छात्रों ने रुचि से उत्तर दिए और बाद में खूब देर तक उन पर चर्चा भी की। यहां हम केवल दो प्रश्नों की चर्चा करेंगे।

सीधी गिरी या फिर. . .

वस्तु नीचे की ओर कब सीधी गिरती है? तभी जब वह स्थिर अवस्था से गिरे, यानी गिरने से पहले गतिशील न हो। क्योंकि तब नीचे की ओर लगने वाले बल के कारण उसकी गति केवल नीचे की

पहला सवाल:

ज़मीन

चित्र में दिखाए गए दो अलग-अलग तलों पर एक लोहे की गेंद को लुढ़काया जाता है। हर तल के निचले सिरे से लेकर ज़मीन तक गेंद कैसे पहुंची – उसकी चाल को चित्र में दर्शाओ। इस प्रश्न में अधिकतर छात्रों ने गेंद को सीधी लाईन में नीचे गिरते दिखाया। तल-क के लिए 32 छात्रों ने नीचे की ओर सीधी खड़ी लाईन बनाई और 28 ने तल की ही दिशा में सीधी लाईन आगे बढ़ा दी। तल-ख में 51 ने लाईन को थोड़ा ऊपर ले जाकर फिर सीधे नीचे गिराया।

*कुल छात्र संख्या 135 थी।

ओर ही होगी। परंतु यदि पहले से ही किसी अन्य दिशा में वस्तु की कुछ गति है तो उसका गिरने का पथ हमेशा एक परवलय (पैराबोला) के रूप में ही होगा। यह पथ दो अलग दिशाओं में गति के होने के परिणाम से ही बनता है। चूंकि हर क्षण पर वस्तु आगे भी जा रही है और साथ ही गिर भी रही है इसलिए हर खंड में उसका पथ वक्र या गोलाईदार ही होगा, सीधा नहीं।

यह बात बीज-गणित के आधार पर स्कूलों में छात्रों को बताई भी जाती है, खासकर जब वे किसी प्रक्षिप्त या फेंकी गई वस्तु के चलन के सिद्धांत को पढ़ते हैं। वैसे सिद्धांत को छोड़ भी दें तो वे रोज़ाना ज़िंदगी में इस बात को देखते भी हैं – पिचकारी से पानी छोड़ते हुए, तीर कमान या गुलेल से खेलते हुए या फिर गेंद फेंकते हुए आदि। तो भी ऐसी सामान्य घटना को सिर्फ 18-19 प्रतिशत बच्चे ही क्यों सही दर्शा पा रहे थे? यही नहीं, जब दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में एम. एस. सी. के छात्रों से यही प्रश्न किया गया तो वहां भी 50 प्रतिशत से अधिक ने गिरती हुई गेंद का पथ सीधी लाईन में नीचे दिखाया।

यह बात केवल चित्रों में पथ दर्शाने की नहीं है। किसी गतिविधि को करते हुए भी यही विश्वास झलकता हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली के हाई स्कूल में भौतिकी पढ़ाने वाले कई शिक्षकों के साथ एक गोष्ठी में हमने उन्हें एक गतिविधि करने को कहा। कमरे के बीच में एक टोकरी रखी थी। हर व्यक्ति को हाथ में गेंद लिए तेज़ी से चलकर आना था और गेंद को ऐसे छोड़ना था कि वह टोकरी में गिरे। अधिकतर व्यक्ति गेंद को तभी छोड़ते थे जब उनका हाथ टोकरी के ठीक ऊपर होता। और होता यह कि गेंद टोकरी के आगे ही गिरती। यानी यहां भी वही अपेक्षा – कि गेंद सीधी नीचे गिरेगी। जैसे कि सीधे नीचे गिरना तो गेंद के लिए हर हालत में स्वाभाविक ही हो। इसी प्रकार के कई प्रयोग अमेरिका के दो विश्वविद्यालयों में हुए थे और वहां भी पाया गया कि भौतिकी के सिद्धांत जानने के बावजूद छात्रों की अपेक्षाओं और सहज विश्वासों में अंतर नहीं आया था। वे सिद्धांतों से नहीं अपने सहज विश्वासों से ही काम करते। और यह सहज विश्वास इतने प्रबल थे कि विज्ञान की पढ़ाई इन पर प्रश्न-चिन्ह लगाने में असमर्थ रही थी।

अगला सवाल भी ऐसे ही एक अटल विश्वास को उभारता है और इन विचारों के इतिहास की ओर

इशारा करता है।

बल की दिशा किधर?

आगे चर्चा करने से पहले आप से निवेदन है कि आप भी अपना उत्तर दर्शाएं – जैसा भी आप के मन में आता है। ताकि आगे की चर्चा का आप पूरा मज़ा ले सकें।

दूसरा सवाल:

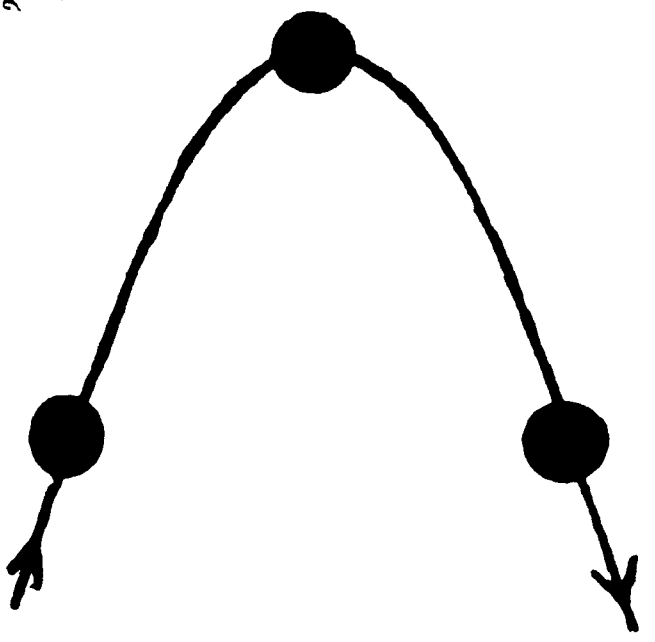

एक गेंद ऊपर की ओर फेंकी गई। चित्र में उसकी तीन अलग-अलग स्थितियां दिखाई गई हैं। गेंद की हर स्थिति पर तीर के निशान से दिखाओ की उस पर वहां जो बल लग रहा है उसकी दिशा क्या है?

इस प्रश्न का सही उत्तर तो दसवीं के केवल 4% और एम. एस. सी. के 10% छात्रों ने दिया। क्या था अधिकतर का विश्वास? अधिकतर लोगों को लगता है कि जिस दिशा में गेंद जा रही हो उसी दिशा में बल भी लग रहा होता है। क्या आप को भी ऐसा ही लगा?

वास्तव में यहां बल तो केवल एक ही है, और वह हर जगह नीचे की ओर लग रहा है। यह है गुरुत्वाकर्षण बल या पृथ्वी का खिंचाव बल। गेंद पर लग रहे इस बल को हम गेंद का भार भी कहते हैं। तो फिर चक्कर क्या है? इतने लोगों का मन यह मानने को तैयार क्यों नहीं कि बल तो हर स्थिति में केवल नीचे को ही लग रहा है?

दसवीं के एक प्रतिभाशाली छात्र ने बहुत ही आत्म-विश्वास के साथ अपने उत्तर का समर्थन देते हुए कहा था, "किसी गेंद को उछालते समय हम उसको एक ऊपरी बल

प्रदान करते हैं जो धीरे-धीरे खर्च होता जाता है। सबसे ऊपर की स्थिति में गेंद को दिया बल उस पर लगने वाले गुरुत्वाकर्षण बल के बराबर हो जाता है। यानी गेंद पर कुल बल शून्य हो जाता है इसलिए गेंद ऊपर जाकर रुक जाती है। इसके बाद गुरुत्वाकर्षण बल ही प्रभाव डालता है और गेंद को नीचे ले आता है।''

यह सुनकर हम दंग रह गए थे। चूंकि यह कथन वही था जो गैलिलियो के शुरू के लेखों में मिलता है। आश्चर्य की बात यह है कि इन छात्रों को ऐसे कथन कभी किसी ने सिखाए नहीं फिर भी इतने विश्वास के साथ कैसे अभिव्यक्त करते हैं इन्हें? गेंद को उछालने के बाद हमारा लगाया बल उसमें समाया रहता है ऐसा तो कतई सही नहीं है, या फिर किसी वस्तु को गतिशील रखने के लिए बल का होना आवश्यक है – यह विचार भी पढ़ाए गए सिद्धांतों के विपरीत है। फिर भी ऐसे अटल सहज विश्वासों की बुनियाद क्या है? और ये विचार केवल दिल्ली ही नहीं परंतु विश्व के कई देशों के लोगों में पाए गए हैं।

चलन का इतिहास

यहीं से बात बढ़ती है इन विचारों के इतिहास की ओर – हज़ारों साल पहले से लोग वस्तुओं को चलते, गिरते या रुकते देखते आए हैं और इन प्रक्रियाओं के बारे में प्रश्न पूछते रहे हैं। पुराने समय में इन प्रश्नों को वैज्ञानिक नहीं, दार्शनिक माना जाता था। चलन के सिद्धांत का सबसे पुराना नमूना अरस्तू के ज़माने से हमें प्राप्त होता है। अरस्तू ने कहा था कि, ''निर्जीव वस्तुओं में दो प्रकार का चलन होता है – स्वाभाविक चलन तथा बलकृत चलन। पृथ्वी पर वस्तुओं का स्वयं सीधा नीचे गिरना या हवा से हल्के धुएं आदि का स्वयं ऊपर जाना – इनको उसने स्वाभाविक चलन का उदाहरण माना। तथा अंतरिक्ष में सभी पिंडों का पृथ्वी के गिर्द चक्कर काटना भी स्वाभाविक चलन माना गया (उस समय यही मान्यता थी कि पृथ्वी ही ब्रह्मांड का केंद्र है)।

अरस्तू ने बलकृत चलन उस क्रिया को कहा जो स्वाभाविक नहीं थी और कहा कि बलकृत चलन के लिए बाहरी बल की आवश्यकता होती है। उसने कहा कि वस्तु जिस दिशा में गतिशील होगी उसी दिशा में उस पर बल भी लग रहा होगा और यदि गति बराबर रहती है, यानी बदलती नहीं, तो बल भी नहीं बदल रहा होगा। 'बल-विज्ञान' पर उसकी पुस्तक में लिखा है –

"एक गतिशील वस्तु तभी रुक जाती है जब उस पर लगने वाला बल उसको और धकेलने में समर्थ नहीं रहता।"

ज़ाहिर है कि अरस्तू का यह सिद्धांत कई प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता था जैसे कि एक वस्तु को गतिशील कर दिया तो फिर कौन-सा बल उसे चलाए रखता है? जैसे, एक बार तीर को कमान से छोड़ दिया तो फिर तीर को चलाए रखने के लिए बल कहां से आया? अरस्तू का सुझाव था कि तीर जिस हवा को हटाकर आगे बढ़ता जाता है वही हवा पीछे जाकर तीर को धकेलती जाती है। पर यह कैसे संभव है? जो हवा तीर को रोकने का काम कर रही है वही उसे आगे भी धकेल रही है? इसी विडंबना के कारण कई सदियों बाद के मध्यकालीन वैज्ञानिक भी अरस्तू के सिद्धांत से असंतुष्ट थे। पर सही उत्तर उनके पास भी नहीं था। खैर, ऐसे रोचक सवाल-जवाबों से शुरू हुई थी बल-विज्ञान या 'मेकेनिक्स' की दास्तां।

और कोई चारा भी नहीं था, चूंकि उस समय ऐसे मसलों को प्रयोग द्वारा सिद्ध करना संभव भी नहीं था। विचार-विमर्श, वाद-विवाद के बल पर ही वह सिद्धांत मिला जो अरस्तू के सिद्धांत से बेहतर साबित हुआ। सुझाव यह था कि जब किसी बाहरी बल के कारण कोई वस्तु गतिशील होती है तो उस बल के कारण वस्तु में एक खास गुण आ जाता है जिसे वेग कहा गया था। इसी वेग से वस्तु गतिशील रहती है। जब यह वस्तु किसी अवरोधक का सामना करती है तो वह या तो रुक जाती है या धीरे होकर चलती रहती है। कितनी धीरे होगी यह इस पर निर्भर करता है कि अवरोधक ने कितने वेग को निष्क्रिय कर दिया। चौदहवीं शताब्दी में फ्रांस में भी ऐसा ही सिद्धांत विकसित हुआ था जिसमें वेग की जगह 'इम्पेटस (संवेग)' कहा गया था। यह वेग आज की उस धारणा की ओर इशारा था जिसे हम *मोमेंटम* भी कहते हैं। इशारा सही ही था, फिर भी बल और वेग की पूरी समझ विकसित नहीं हुई थी।

गैलिलियो और न्यूटन

गैलिलियो शुरू में वेग के ही सिद्धांत को मानता था। पर शीघ्र ही उसने जान लिया कि गतिशील वस्तु के रुकने के लिए बाहरी बल का होना ज़रूरी है – केवल यह कहना काफी नहीं कि उसका वेग खत्म हो गया।

गैलिलियों ने अलग-अलग सतहों पर एक गेंद लुढ़का कर देखा कि

सबसे चिकनी सतह पर गेंद अधिक दूर तक जाती है। इससे उसने यह कल्पना की कि यदि ऐसी सतह हो जिस पर घर्षण हो ही नहीं और गेंद पर कोई अन्य बाहरी बल न हो तो गेंद चलती ही जाए – रुके ही नहीं। कल्पना की यह एक महत्वपूर्ण छलांग थी जिसने चलन का सबसे गहरा सिद्धांत पकड़ लिया था, जो सदियों से पकड़ में नहीं आ रहा था। और वास्तव में इस बात को शायद कल्पना ही पकड़ सकती थी। चूंकि आम ज़िंदगी में ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं दिखती जिसमें कोई बल न लग रहा हो। कोई वस्तु फेंको तो उस पर पृथ्वी का बल या फिर हवा का अवरोधक बल लगेगा। किसी सतह पर वस्तु लुढ़काओ तो, चाहे वह बर्फ की ही सतह हो, उस का भी कुछ न कुछ घर्षण बल होगा। इसीलिए पृथ्वी पर होती क्रियाओं को देखकर यह समझ पाना कि बल के बिना चलन कैसा होगा, या फिर बल लगने से चलन पर क्या असर पड़ता है शायद असंभव है। और चक्कर यह है कि इन प्रक्रियाओं को देखते समय हमें यह तो दिखता नहीं कि इनमें वास्तव में बल लग रहा है या नहीं।

गतिशील वस्तु पर लग रहा पृथ्वी का बल, हवा का अवरोधक बल या सतह का घर्षण बल – ये सब तो हमारे लिए अदृश्य ही हैं। हमारा मन तो तभी मानता है कि वस्तु पर बल लग रहा है जब साफ-साफ दिखाई दे कि कोई जीव या मशीन उसे धकेल रहे हैं। सदियों से बल की हमारी सहज धारणा यही रही है। हम जो देखते आए हैं वह यह कि जब किसी वस्तु पर बल लगाओ तो वह चलती है और कुछ देर बाद स्वयं रुक जाती है। इसीलिए अरस्तू की तरह आज भी हमारा मन कहता है कि चलन के लिए लगातार उसी दिशा में बल लगते रहना चाहिए। और वस्तु को कुछ रोकने वाला न हो तो वह स्वाभाविक रूप से सीधी नीचे गिरती है।

चलन के विचारों को सही ढंग से व्यवस्थित न्यूटन ने ही किया और तीन सिद्धांतों के रूप में पेश किया। उसने कहा कि कोई बल न लग रहा हो तो गतिशील वस्तु बराबर उसी (एकरूप) गति से चलती रहेगी – उसी दिशा की सीध में। पर यदि कोई बल लगातार लग रहा है तो वस्तु की गति बदलती जाएगी, जैसे सीधे नीचे गिरने में गति तेज़ होती जाती है। वस्तु की केवल दिशा बदलना भी गति बदलना माना जाता है और उसके लिए भी बल होना आवश्यक है। जैसे पृथ्वी के गिर्द चक्कर लगाने

में चांद की दिशा हर क्षण बदल रही है (चाहे वह एक चक्कर की कुल दूरी हमेशा बराबर समय में तय करता है)। यहां बल है पृथ्वी और चांद के बीच का आकर्षण बल।

मूल बात तो यह है कि सिद्धांत तो हम पढ़ लेते हैं, कठिन सवाल भी हल कर लेते हैं; पर हमारा मन नहीं मानता। हमारे विश्वासों को ध्यान से टटोलो तो वे सदियों पहले के विश्वासों से मेल खाने लगते हैं। इतिहास में चलन के इन विचारों को विकसित होने में बहुत लंबा समय लगा, गहरे सवाल जवाब, प्रयोग आदि के आधार पर विश्वास हिले, कल्पना ने नई अंगड़ाई ली, तभी जाकर संभव हुआ एक संतोष-प्रद समझ का उभरना। विज्ञान शिक्षण भी जब तक हमारे सहज विश्वासों को पहचानकर उन्हें चुनौती नहीं देता, उन्हें बदलने का अवसर नहीं देता तब तक इन भिन्न विचारों को हम सही ढंग से आत्मसात नहीं कर पाएंगे। हां, दोहरा ज़रूर देंगे, स्कूल-कॉलेज के औपचारिक वातावरण में उन सिद्धांतों का दक्ष उपयोग भी कर लेंगे – पर दिल की गहराइयों तक शायद नहीं ले पाएंगे।

अनीता रामपाल: लालबहादुर शास्त्री अकादमी, मसूरी में फैलो; होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध।

यह लेख एकलव्य द्वारा प्रकाशित विज्ञान व टेक्नॉलॉजी फीचर सर्विस 'स्रोत' के अक्टूबर 1989 के अंक से लिया गया है।